झारखंड उच्च न्यायालय, रांची

डब्ल्यू.पी.(एस) संख्या 917/2024

प्रो. (डॉ.) बासुदेव दास, उम्र लगभग 52 वर्ष, पिता- स्वर्गीय सुधा कृष्ण दास, निवासी- सी.आई.पी. कॉलोनी, कांके, डाकघर+थाना- कांके, जिला-रांची (झारखंड)।

.....याचिकाकर्ता

बनाम

1. भारत संघ, द्वारा सचिव, स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार, कक्ष संख्या: 156-A, निर्माण भवन, डाकघर+थाना+जिला- नई दिल्ली- 110011.
2. महानिदेशक, स्वास्थ्य सेवा, महानिदेशालय, स्वास्थ्य सेवा, स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार, कमरा नं: 446-A, निर्माण भवन, डाकघर+थाना+जिला- नई दिल्ली- 110011.
3. अवर सचिव, सी.एच.एस. प्रभाग, स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार, निर्माण भवन, डाकघर+थाना+जिला- नई दिल्ली-110011.
4. निदेशक, केंद्रीय मनोचिकित्सा संस्थान, रांची, कार्यालय स्थित सी.आई.पी., कांके, डाकघर+थाना- कांके, जिला- रांची।

..... उत्तरवादीगण

गणपूर्ति: : माननीय न्यायमूर्ति, श्री सुजीत नारायण प्रसाद
: माननीय न्यायमूर्ति, श्री अरुण कुमार राय.

याचिककर्ता की ओर से : श्री अमृतांश वत्स, अधिवक्ता

उत्तरवादीगण की ओर से : श्री अनिल कुमार, ए.एस.जी.आई.
: श्री अभिजीत कुमार सिंह, अधिवक्ता

<u>आदेश सं. 03/दिनांक 4 मार्च, 2024</u>

1. यह रिट याचिका भारतीय संविधान के अनुच्छेद 226 के अंतर्गत लाया गया है, जिसमें विद्वान केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण, पटना (रांची पीठ) द्वारा दिनांक

14.02.2024 को O.A./051/00927/2023 में पारित आदेश को चुनौती दी गई है, जिसके तहत याचिकाकर्ता के, स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार (CHS डिवीजन) के अवर सचिव के हस्ताक्षर से जारी आदेश संख्या सी-13011/5/2023-CHS-III, में अन्तर्विष्ट दिनांक 28.11.2023 के स्थानांतरण आदेश को और निदेशक, केंद्रीय मनो चिकित्सा संस्थान, रांची के हस्ताक्षर से जारी किया गया मेमो संख्या A.12020/1/2006-ESTT में अंतर्विष्ट दिनांक 28.11.2023 के भारोन्मुक्ति आदेश (रिलीविंग ऑर्डर) को अभिखंडित करने के लिये की गई प्रार्थना को खारिज कर दिया गया है।

इसके अतिरिक्त अवर सचिव, स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार, (CHS डिवीजन) के हस्ताक्षर से जारी आदेश संख्या C-13011/5/2023- CHS-III में अंतर्विष्ट दिनांक 28.11.2023 के स्थानांतरण आदेश, जिसके तहत याचिकाकर्ता को केंद्रीय मनोचिकित्सा संस्थान, रांची से जी.एन.सी.टी., दिल्ली में स्थानांतरित कर दिया गया है, को रद्द करने के लिये निर्देश की ईप्सा की गई है ।

निदेशक, केंद्रीय मनोचिकित्सा संस्थान, रांची के हस्ताक्षर से जारी ज्ञापांक संख्या A.12020/1/2006-ESTT, में अंतर्विष्ट दिनांक 28.11.2023 के कार्यालय आदेश को अभिखंडित करने के लिए भी प्रार्थना की गई है, जिसके तहत याचिकाकर्ता को जी.एन.सी.टी. में जॉइन करने के लिये तत्काल प्रभाव से इनके कर्तव्य और जिम्मेदारी से भारोन्मुक्त कर दिया गया है और दिल्ली सचिवालय में प्रधान सचिव, स्वास्थ ,जी.एन.सी.टी. को रिपोर्ट करने का निर्देश दिया गया है।

2. रिट याचिका में किए गए अभिवचनों के अनुसार रिट याचिकाकर्ता को रिट याचिका दायर करने के लिए प्रेरित करने वाले तथ्य निम्नानुसार हैं:-

याचिकाकर्ता को 2006 में सी.आई.पी., रांची में सहायक प्रोफेसर, मनोचिकित्सा के पद पर नियुक्त किया गया था और तब से वह वहां काम कर रहा है।

3. वर्ष 2008 में याचिकाकर्ता को एसोसिएट प्रोफेसर (मनोचिकित्सा) के पद पर पदोन्नत किया गया था और उसके बाद वर्ष 2012 में याचिकाकर्ता को प्रोफेसर, (मनोचिकित्सा) के पद पर पदोन्नत किया गया। याचिकाकर्ता को दिनांक 07.05.2021 के कार्यालय आदेश के तहत, 28.12.2019 के प्रभाव से, प्रोफेसर-निदेशक (मनोचिकित्सा) के पद पर पदोन्नत किया गया ।

4. दिनांक 20.06.2023 को, याचिकाकर्ता को उप निदेशक, (चिकित्सा शिक्षा), स्वास्थ्य सेवा महानिदेशालय, स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार के हस्ताक्षर से जारी कारण बताओ नोटिस तामील कराया गया, जिसके तहत याचिकाकर्ता को हाउस-

कीपिंग सेवाओं और सुरक्षा गार्ड सेवाओं की आउटसोर्सिंग के संबंध में दो अभियोगों के खिलाफ जवाब देने के लिए कहा गया। जवाब में, याचिकाकर्ता ने तुरंत उप निदेशक को संबोधित पत्र दिनांक 23.06.2023 के माध्यम से एक विस्तृत जवाब दिया, जिसमें उसने अपने खिलाफ लगाए गए प्रत्येक आरोप का स्पष्टीकरण के साथ विस्तार से जवाब दिया।

5. फिर दिनांक 22.09.2023 के पत्र के माध्यम से याचिकाकर्ता को उसी प्राधिकारी द्वारा, सक्षम प्राधिकारी की स्वीकृति के बिना, वर्ष 2021 और 2022 में नर्सिंग अधिकारियों की भर्ती के संबंध में एक पूर्णतः भिन्न मुद्दा/अभियोग के संबंध में पुनः कारण बताओ नोटिस जारी करते हुए जवाब मांगा गया। याचिकाकर्ता ने दिनांक 27.09.2023 के पत्र के माध्यम से उपरोक्त कारण बताओ नोटिस का उत्तर दिया।

6. तत्पश्चात, याचिकाकर्ता को उसी प्राधिकारी द्वारा दिनांक 17.10.2023 को पुस्तकालय की पुस्तकें खरीदने में व्यय किए गए राजस्व व्यय और अन्य आरोपों के संबंध में तीसरा कारण बताओ नोटिस तामील कराया गया, जिसका पिछले दो कारण बताओ नोटिसों के अभिकथनों से कोई संबंध नहीं था। इसके जवाब में, याचिकाकर्ता ने दिनांक 20.10.2023 के पत्र के माध्यम से जवाब विस्तृत दिया।

7. चूंकि इनके विरुद्ध कोई आरोप गठित नहीं किया गया और न ही इनके विरुद्ध कोई अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू की गई, इसका अर्थ यह हुआ कि उत्तरवादी प्राधिकारियों ने कारण बताओ नोटिस का दिए गए जवाब को संतोषजनक पाया और इसलिए उक्त मामले में आगे कार्यवाही करने के बारे में नहीं सोचा ।

8. लेकिन याचिकाकर्ता को भारत सरकार के अवर सचिव के हस्ताक्षर से जारी दिनांक 20.10.2023 का आदेश प्राप्त हुआ, जिसके तहत याचिकाकर्ता को, तत्काल निदेशक, सी.आई.पी., रांची का प्रभार डॉ. तरुण कुमार को सौंपने और शाम 5:00 बजे तक मंत्रालय को अनुपालन रिपोर्ट भेजने का निर्देश दिया गया ।

9. उपरोक्त आदेश के अनुपालन में, कोई विकल्प न होने पर, याचिकाकर्ता ने डॉ. तरुण कुमार को निदेशक, सी.आई.पी., रांची के पद का प्रभार सौंप दिया।

10. इसके बाद, याचिकाकर्ता ने सचिव, स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार को दिनांक 01.11.2023 के पत्र के माध्यम से तत्काल विस्तृत अभ्यावेदन दिया, जिसमें इन्हें निदेशक, सी.आई.पी., रांची के पद पर बहाल करने का अनुरोध किया गया, क्योंकि याचिकाकर्ता को, कानून की उचित प्रक्रिया का पालन किए बिना उक्त पद से हटा दिया गया था और हटाने की उक्त कार्रवाई के लिए कोई ठोस और वैध कारण नहीं बताया गया था।

11. इसके बाद, उपर्युक्त आधार लेते हुए, याचिकाकर्ता ने निदेशक के पद से इनके निष्कासन के आदेश को चुनौती देते हुए रिट याचिका डब्ल्यू.पी.(एस) संख्या 6287/2023 दायर कर इस न्यायालय के पास पहुंचे, जिसे बाद में सक्षम फोरम के समक्ष संपर्क करने की स्वतंत्रता के साथ, दिनांक 23.11.2023 के आदेश द्वारा वापस ले लिया गया।

12. याचिकाकर्ता को दिनांक 28.11.2023 को एक आदेश प्राप्त हुआ, जैसा कि आदेश संख्या C-13011/5/2023-CHS-III और ज्ञापांक संख्या A.12020/1/2006-ESTT में अंतर्विष्ट है, जिसके तहत उन्हें तत्काल प्रभाव से सी.आई.पी., रांची से जी.एन.सी.टी., दिल्ली में स्थानांतरित कर दिया गया और उसी दिन कार्यालय आदेश दिनांक 28.11.2023 के तहत उन्हें सी.आई.पी., रांची में अपने कर्तव्यों और जिम्मेदारियों से भारोन्मुक्त कर दिया गया और दिल्ली सचिवालय में प्रमुख सचिव, स्वास्थ्य, जी.एन.सी.टी., दिल्ली को रिपोर्ट करने का निर्देश दिया गया है।

13. याचिकाकर्ता ने केन्द्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण, पटना (रांची पीठ) में अपील की थी, जिसमें आक्षेपित आदेश के क्रियान्वयन पर रोक लगाने की अंतरिम प्रार्थना की गई थी, लेकिन विद्वान न्यायाधिकरण ने दिनांक 11.12.2023 के आदेश के तहत अंतरिम प्रार्थना को खारिज कर दिया।

14. विद्वान न्यायाधिकरण ने अंततः मुद्दे पर निर्णय दिया, आक्षेपित आदेश दिनांक 14.02.2024 के तहत, जो कि यहाँ आक्षेपित है, जिसके तहत मूल आवेदन को इस आधार पर खारिज कर दिया गया कि रिट याचिकाकर्ता के स्थानांतरण का आदेश किसी भी वैधानिक प्रावधान का उल्लंघन नहीं करता है, स्थानांतरण आदेश जारी करने में कोई दुर्भावनापूर्ण इरादा नहीं था और स्थानांतरण आदेश सक्षम प्राधिकारी के अनुमोदन से जारी किया गया था, जिसके खिलाफ वर्तमान रिट याचिका दायर की गई है।

15. याचिकाकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री अमृतांश वत्स ने प्रस्तुत किया है कि यद्यपि स्थानांतरण का आदेश प्रशासनिक अत्यावश्यकता पर पारित किया गया है, किन्तु यदि आक्षेपित आदेश पर विचार किया जाए तो इसे प्रशासनिक अत्यावश्यकता नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि यह प्रतिवादियों की ओर से विद्वान न्यायाधिकरण के समक्ष गुण-दोष के मुद्दे पर दायर हलफनामे से स्पष्ट है, जैसा कि उनकी ओर से दाखिल लिखित कथन में पारा 5, और उससे आगे उपलब्ध है, अतः इसे सामान्य स्थानांतरण नहीं कहा जा सकता है, बल्कि यह दण्ड पर आधारित है, और इस प्रकार, विधि की स्थापित नियम के अनुसार, दण्डात्मक स्थानांतरण उचित नहीं कहा जा सकता है, लेकिन उपर्युक्त तथ्य पर विचार किए बिना, विद्वान न्यायाधिकरण इस निष्कर्ष पर पहुंचकर कि स्थानांतरण आदेश जारी करने में किसी भी वैधानिक प्रावधान का उल्लंघन नहीं हुआ है, कोई दुर्भावनापूर्ण

इरादा नहीं था तथा स्थानांतरण आदेश सक्षम प्राधिकारी के अनुमोदन से जारी किया गया था, इसमें हस्तक्षेप करने से इनकार कर दिया है ।

16. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि याचिकाकर्ता द्वारा किसी वैधानिक प्रावधान के उल्लंघन या दुर्भावना या द्वेष से, या सक्षम प्राधिकारी द्वारा आदेशे जारी नहीं किये जाने का आधार नहीं लिया गया था, बल्कि स्थानांतरण के आदेश को चुनौती देने का आधार यह था कि यह स्थानांतरणण दण्ड के रूप में है जो इस तथ्य पर आधारित है कि उत्तरवादी प्राधिकारियों ने याचिकाकर्ता द्वारा निदेशक, सी.आई.पी., रांची के रूप में शासकीय कर्तव्य के निर्वहन के दौरान कुछ अनियमितताएं इंगित की गई हैं। इसलिए, यह स्पष्ट रूप से दंडात्मक प्रकृति का स्थानांतरण आदेश का मामला है, लेकिन उपरोक्त मुद्दे पर निर्णय लिए बिना, मूल आवेदन को खारिज करते हुए स्थानांतरण आदेश में हस्तक्षेप करने से इनकार कर दिया गया है, इस प्रकार, आक्षेपित आदेश में हस्तक्षेप करने की आवश्यकता है।
17. इसके विपरीत, भारत के विद्वान अतिरिक्त महान्याभिकर्ता (सॉलिसीटर जनरल) श्री अनिल कुमार ने विद्वान न्यायाधिकरण द्वारा पारित आदेश का बचाव किया है।
18. इस दलील को आधार बनाया गया है कि विद्वान न्यायाधिकरण ने इस तथ्य को ध्यान में रखा है कि दायर लिखित बयान के माध्यम से प्रतिवादियों की ओर से कथित कुछ अनियमितताएं किए जाने को इंगित किया और इसे प्रशासनिक आवश्यकता मानते हुए रिट याचिकाकर्ता को उनके मूल पद अर्थात प्रोफेसर के पद पर रांची से दिल्ली स्थानांतरित कर दिया गया है, इसलिए स्थानांतरण का आदेश प्रशासनिक अत्यावश्यकता में है।
19. यह दलील दी गई है कि याचिकाकर्ता द्वारा जो आधार लिया जा रहा है कि आदेश दंडात्मक प्रकृति का है, वह बिल्कुल भी उपलब्ध नहीं है यदि दिनांक 28.11.2023 के स्थानांतरण आदेश पर विचार किया जाए, जिसमें स्थानांतरण आदेश सामान्य है, जिसमें किसी दंड का कोई संदर्भ नहीं है, यहां तक कि इनके द्वारा की गई कथित किसी अनियमितता का भी कोई उल्लेख नहीं है।
20. यह दलील दी गई है कि जहां तक उपरोक्त अनियमितता का संबंध है, यह मामले का बिल्कुल अलग पहलू है और यदि किसी लोक सेवक द्वारा अपने शासकीय कर्तव्य के निर्वहन में कोई अनियमितता पाई जाती है तो नियुक्ति प्राधिकारी का यह विशेषाधिकार है कि वह नियमित विभागीय कार्यवाही आरंभ करे, जिसका स्थानांतरण आदेश से कोई संबंध नहीं है।

21. लेकिन समान रूप से यह भी विधिस्थापित है कि यदि किसी लोक सेवक के विरुद्ध विभागीय कार्यवाही परिकल्पित की जाती है, तो निष्पक्ष और उचित जांच के लिए दो विकल्प बचते हैं या तो संबंधित कर्मचारी को निलंबित कर दिया जाए या उसे एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्थानांतरित कर दिया जाए।
22. उत्तरवादी प्राधिकारियों ने रिट याचिकाकर्ता को निलंबित नहीं किया है, बल्कि उसे स्थानांतरित करना उचित समझा है, ताकि निदेशक, सी.आई.पी., रांची के रूप में अपने कर्तव्य का निर्वहन करते समय उसके द्वारा की गई कथित अनियमितता के संबंध में उचित जांच करने में याचिकाकर्ता का कोई प्रभाव न पड़े।
23. इसलिए, याचिकाकर्ता की ओर से दुर्भावना का आधार उठाना गलत है, बल्कि यह सामान्य स्थानांतरण का मामला है, जो कि प्रशासनिक अत्यावश्यकता पर याचिकाकर्ता द्वारा किए गए कथित अभियोग के संबंध में निष्पक्ष जांच करने के लिए है।
24. विद्वान ए.एस.जी.आई. ने उपर्युक्त आधार पर प्रस्तुत किया है कि विद्वान न्यायाधिकरण ने मूल आवेदन को खारिज करते समय उपर्युक्त आधार को ध्यान में रखा है, जिसे त्रुटिपूर्ण नहीं कहा जा सकता है, इसलिए, वर्तमान रिट याचिका खारिज किए जाने योग्य है।
25. हमने पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं को सुना है, तथा आक्षेपित आदेश में विद्वान न्यायाधिकरण द्वारा दर्ज निष्कर्ष तथा रिट याचिका में उपलब्ध दलीलों पर विचार किया है, जिसमें प्रतिवादियों की ओर से दायर लिखित कथन भी संलग्न किया गया है।
26. अभिवचनों और दलीलों पर आधारित तथ्यात्मक पहलू के अधिमूल्यन के आधार पर, इस न्यायालय को निम्नलिखित विवाद्दयकों पर विचार करना आपेक्षित है:-

    (i) क्या स्थानांतरण के आदेश को दंडात्मक कहा जा सकता है?

    (ii) क्या स्थानांतरण के आदेश को दुर्भावना से ग्रस्त कहा जा सकता है?

    (iii) क्या नियुक्ति प्राधिकारी को प्रशासनिक अत्यावश्यकता पर स्थानांतरण करने की शक्ति प्राप्त है, ताकि किसी एक या अन्य, यहां वर्तमान याचिकाकर्ता, द्वारा अपने पदीय कर्तव्य के निर्वहन में अनियमितता के आरोप के संबंध में उचित जांच की जा सके।
27. चूंकि ये सभी विवाद्दयक आपस में जुड़े हुए हैं, इसलिए इन्हें आगे एक साथ लिया जा रहे है।

28. लेकिन उपरोक्त विवाद्यकों का जवाब देने से पहले, यह न्यायालय स्थानांतरण के आदेश में हस्तक्षेप के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के कुछ प्रमाणिक निर्णयों का संदर्भ देना उचित और उपयुक्त समझा।

29. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने शिल्पी बोस (श्रीमती) और अन्य बनाम बिहार राज्य और अन्य, ए.आई.आर.1991 एस.सी. 532 के मामले के पैराग्राफ 4 में निर्धारित किया है कि अदालतों को आमतौर पर आदेश में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए, बल्कि प्रभावित पक्ष को विभाग के उच्च अधिकारियों के पास जाना चाहिए। यदि न्यायालय सरकार और उसके अधीनस्थ अधिकारियों द्वारा जारी किए गए दिन-प्रतिदिन के स्थानांतरण आदेशों में हस्तक्षेप करना जारी रखते हैं, तो प्रशासन में पूरी तरह से अराजकता होगी जो लोक कल्याण का साधक नहीं होगी, त्वरित संदर्भ के लिए, उपरोक्त निर्णय के पैराग्राफ 4 को उद्धृत और निर्दिष्ट किया जा रहा है: -

> 4. हमारे मतानुसार, न्यायालयों को जनहित में तथा प्रशासनिक कारणों से पारित किए गए स्थानांतरण आदेश में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए, जब तक कि स्थानांतरण आदेश किसी आज्ञापरक विधिक नियम का उल्लंघन करके या दुर्भावना के आधार पर न किए गए हों। स्थानांतरणीय पद धारण करने वाले सरकारी कर्मचारी को एक स्थान पर या दूसरे स्थान पर पदस्थापित रहने का कोई अंतर्निहित अधिकार नहीं है, वह एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्थानांतरित होने के दायित्वाधीन है। सक्षम प्राधिकारी द्वारा जारी किए गए स्थानांतरण आदेश उसके किसी भी विधिक अधिकार का उल्लंघन नहीं करते हैं। यहां तक कि यदि कार्यकारी निर्देशों या आदेशों का उल्लंघन करके स्थानांतरण आदेश पारित किया जाता है, तो भी न्यायालयों को आमतौर पर आदेश में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए, बल्कि प्रभावित पक्ष को विभाग के उच्च प्राधिकारियों से संपर्क करना चाहिए। यदि न्यायालय सरकार और उसके अधीनस्थ अधिकारियों द्वारा जारी किए गए दिन-प्रतिदिन के स्थानांतरण आदेशों में हस्तक्षेप करना जारी रखते हैं, तो प्रशासन में पूरी तरह से अराजकता फैल जाएगी जो जनहित के लिए साधक नहीं होगी। उच्च न्यायालय ने स्थानांतरण आदेशों में हस्तक्षेप करते हुए इन पहलुओं की अनदेखी की है ।

30. इसके अलावा, भारत संघ एवं अन्य बनाम एस.एल. अब्बास, (1993) 4 एस.सी.सी. 357 के मामले में माननीय शीर्ष न्यायालय ने संप्रेक्षित किया है

कि स्थानांतरण के आदेश पर न्यायालय या न्यायाधिकरण में तभी प्रश्न उठाया जा सकता है, जब वह दुर्भावनपूर्वक पारित किया गया हो या जब वह संविधिक प्रावधानों

का उल्लंघन करते हुए पारित किया गया हो, त्वरित संदर्भ के लिए पैराग्राफ 10 को नीचे उद्धृत किया गया है:-

> 10. उक्त संप्रेक्षण वास्तव में उत्तरवादी के तर्कों का समर्थन करने के बजाय उन्हें नकारात्मक रूप से प्रस्तुत करता है। निर्णय प्रतिवादियों के इस तर्क का भी समर्थन नहीं करता है कि यदि किसी न्यायालय या न्यायाधिकरण में ऐसे आदेश पर प्रश्न उठाया जाता है, तो प्राधिकारी इसके लिए कारण बताकर स्थानांतरण को उचित ठहराने के लिए बाध्यकारी है। यह, यह भी नहीं कहता है कि यदि किसी प्रशासनिक निर्देश/दिशानिर्देश का पालन नहीं किया जाता है, तो न्यायालय या न्यायाधिकरण स्थानांतरण के आदेश को रद्द कर सकता है, और इस कारण से इसे दुर्भावनपूर्वक नहीं कहा जा सकता है। फिर से दोहराते हुए, स्थानांतरण के आदेश पर न्यायालय या न्यायाधिकरण में केवल तभी प्रश्न उठाया जा सकता है जब इसे दुर्भावनपूर्वक पारित किया गया हो या जहां इसे संविधिक प्रावधानों का उल्लंघन करके किया गया हो।

31. इसी प्रकार, **यू.पी. राज्य एवं अन्य बनाम गोबरधन लाल, (2004) 11 एस.सी.सी. 402** के मामले में माननीय शीर्ष न्यायालय ने निर्धारित किया है कि स्थानांतरण के आदेश से सामान्यतः परहेज़ किया जाना चाहिए तथा न्यायालयों या न्यायाधिकरणों द्वारा ऐसे आदेशों का समर्थन नहीं किया जाना चाहिए, जैसे कि वे ऐसे आदेशों पर अपीलीय प्राधिकारी हों, जो संबंधित स्थिति की प्रशासनिक आवश्यकताओं और अपेक्षाओं की बारीकियों का आकलन कर सकते हैं। त्वरित संदर्भ के लिए उपरोक्त निर्णय के पैराग्राफ 8 को नीचे इस प्रकार निर्दिष्ट किया जा रहा है:-

> 8. स्थानांतरण के आदेश को चुनौती देने से सामान्यतः बचना चाहिए और न्यायालयों या न्यायाधिकरणों द्वारा इस प्रकार से मुखाकृत-समर्थन नहीं किया जाना चाहिए मानो वे ऐसे आदेशों पर अपीलीय प्राधिकारी हैं, जो संबंधित स्थिति की प्रशासनिक आवश्यकताओं और अपेक्षाओं की बारीकियों का आकलन कर सकते हैं। ऐसा इसलिए है क्योंकि न्यायालय या न्यायाधिकरण स्थानांतरण के मामले में राज्य के सक्षम प्राधिकारियों के निर्णयों के स्थान पर अपना निर्णय नहीं ले सकता है और यहां तक कि जब दुर्भावना के आरोप लगाए जाते हैं तो वे न्यायालय में विश्वास पैदा करने वाले होने चाहिए या ठोस सामग्री पर आधारित होने चाहिए और केवल अनुमान या अटकल से उत्पन्न विचार के आधार पर उन पर विचार नहीं किया जाना चाहिए और मजबूत और ठोस कारणों के अलावा,

स्थानांतरण के आदेश में सामान्य रूप से कोई हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता।

32. इसके अलावा, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **मोहम्मद मसूद अहमद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य (2007) 8 एस.सी.सी. 150** के मामले में कहा कि आदेश कर्मचारी की सेवा शर्तों का एक भाग है जिसमें न्यायालय को अनुच्छेद 226 के अधीन अपने विवेकाधीन क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुये सामान्यतः हस्तक्षेप नहीं करना चाहिये,जब तक कि न्यायालय को यह ना लगे कि आदेश दुर्भावनापूर्ण है या या सेवा नियम ऐसे स्थानांतरण को प्रतिबंधित करते हैं या प्राधिकारी आदेश पारित करनेके लिये सक्षम नहीं थे, तत्पर संदर्भ के लिए, पैराग्राफ 7 को नीचे उद्धृत किया जा रहा है:-

> 7. भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत स्थानांतरण की न्यायिक समीक्षा का दायरा राजेंद्र रॉय बनाम भारत संघ [(1993) 1 एस.सी.सी. 148], नेशनल हाइड्रोइलेक्ट्रिक पावर कॉरपोरेशन लिमिटेड बनाम श्री भगवान [(2001) 8 एस.सी.सी. 574], स्टेट बैंक ऑफ इंडिया बनाम अंजन सान्याल [(2001) 5 एस.सी.सी. 508] में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा तय किया गया है। सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निर्धारित उपरोक्त सिद्धांतों का पालन करते हुए, इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने विजय पाल सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य [(1997) 3 ई.एस.सी. 1668: 1998 इला. एल.जे. 70] और ओंकार नाथ तिवारी बनाम मुख्य अभियंता, लघु सिंचाई विभाग [(1997) 3 ई.एस.सी. 1866: 1998 इला. एल.जे. 245] में निर्धारित किया है कि उपरोक्त विनिश्चयों में अधिकथित विधि का सिद्धांत यह है कि स्थानांतरण का आदेश किसी कर्मचारी की सेवा शर्तों का एक हिस्सा है, जिसमें अनुच्छेद 226 के तहत अपने विवेकाधीन क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए न्यायालय द्वारा सामान्यतः हस्तक्षेप नहीं किया जाना चाहिए, जब तक कि न्यायालय यह न पाए कि या तो आदेश दुर्भावनापूर्ण है या सेवा नियम ऐसे स्थानांतरण को प्रतिबंधित करते हैं, या आदेश जारी करने वाले अधिकारी आदेश पारित करने के लिए सक्षम नहीं थे।

33. इस प्रकार, उपर्युक्त निर्णयों से यह स्पष्ट है कि न्यायिक समीक्षा की शक्ति का प्रयोग करते हुए उच्च न्यायालय को स्थानांतरण के मामले में इस सिद्धांत के आधार पर न्यूनतम हस्तक्षेप करने की आवश्यकता है कि किसको किस स्थान पर पदस्थापित किया जाए, यह नियुक्ति प्राधिकारी का विशेष अधिकार क्षेत्र है।

34. यह न्यायालय अब उपर्युक्त विधिक स्थिति के आधार पर उपर्युक्त विवाद्दयकों का जवाब देने के लिए अग्रसर हो रहा है, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है।

35. यहाँ स्वीकृत तथ्य यह है कि याचिकाकर्ता द्वारा निदेशक के रूप में कार्य करते समय, उसके विरुद्ध कुछ विधिक अनियमितताओं की शिकायत की गई थी, जिसे सरकारी/आधिकारिक कर्तव्य निर्वहन के विरुद्ध बताया गया था। इसके अलावा स्वीकृत तथ्य यह है कि उक्त अनियमितता की नियमित जांच अपने अंजाम तक नहीं पहुंची, बल्कि केवल जवाब के लिए कारण बताओ नोटिस जारी किए गए थे।

36. इसी बीच, प्राधिकारी ने दिनांक 20.10.2023 के आदेश के तहत याचिकाकर्ता से निदेशक के पद से पदभारमुक्त करने का निर्णय लिया। कथित आदेश विद्वान केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण के समक्ष एक अलग कार्यवाही में चुनौती के अधीन है।

37. सक्षम प्राधिकारी द्वारा दिनांक 28.11.2023 को एक अन्य आदेश पारित किया गया, जिसमें रिट याचिकाकर्ता को प्रोफेसर, सी.आई.पी., रांची के पद से जी.एन.सी.टी., दिल्ली में तत्काल प्रभाव से स्थानांतरित किया गया।

38. यहां आगे जिस तथ्य का उल्लेख किया जाना आवश्यक है वह यह कि प्रोफेसर के मूल पद के धारक के आधार पर याचिकाकर्ता को निदेशक के रूप में कार्य करने का निर्देश दिया गया था, लेकिन जिस क्षण निदेशक के पद का प्रभार छीन लिया गया, वह प्रोफेसर बन गए और उसी क्षण उन्हें सी.आई.पी., रांची से जी.एन.सी.टी., दिल्ली में दिनांक 28.11.2023 के आदेश के तहत स्थानांतरित कर दिया गया।

39. याचिकाकर्ता, स्थानांतरण आदेश से व्यथित होकर, मूल आवेदन O.A. संख्या 051/00927/2023 दायर करके विद्वान न्यायाधिकरण के पास पहुँचा था। कथित मूल आवेदन में अंतरिम राहत की भी मांग की गई थी, लेकिन दिनांक 11.12.2023 के आदेश के तहत उक्त अंतरिम राहत प्रदान नहीं किए जाने के बाद, इस न्यायालय के समक्ष एक रिट याचिका डब्ल्यू.पी.(एस) संख्या 7183/2023 दायर की गई।

40. इस न्यायालय ने विद्वान न्यायाधिकरण द्वारा पारित आदेश में हस्तक्षेप करने से इनकार कर दिया, जिसमें स्थानांतरण पर अंतरिम रोक लगाने से इनकार किया गया था, तथापि, विद्वान न्यायाधिकरण से मूल आवेदन का निपटारा करने का अनुरोध किया गया, जिसके आधार पर प्रतिवादियों की ओर से दायर लिखित कथन पर विचार करने के बाद मूल आवेदन का निपटारा किया गया।

41. उक्त आदेश को इस कार्यवाही में, ऊपर उल्लिखित आधारों पर, चुनौती दी गई है।

42. याचिकाकर्ता ने स्थानांतरण का आधार दंडात्मक प्रकृति का बताया है। स्थानांतरण आदेश को पढ़कर ही आदेश की प्रकृति पर विचार किया जाना है और इस प्रकार, इस

न्यायालय ने दिनांक 28.11.2023 के स्थानांतरण आदेश का परिशीलन करना उचित समझा है।

43. इस न्यायालय ने इसका परिशीलन करने के पश्चात पाया है कि याचिकाकर्ता को तत्काल प्रभाव से सी.आई.पी., रांची से जी.एन.सी.टी., दिल्ली स्थानांतरित कर दिया गया है। यह दो पंक्तियों का आदेश है, जिसे त्वरित संदर्भ के लिए उद्धृत किया जा रहा है और नीचे संदर्भित किया जा रहा है:-

"डॉ. बासुदेव दास, निदेशक प्रोफेसर (मनोचिकित्सा) को इसके द्वारा तत्काल प्रभाव से और अगले आदेश तक सी.आई.पी., रांची से जी.एन.सी.टी., दिल्ली स्थानांतरित किया जाता है।" .

44. अधिकार क्षेत्र के अभाव का मुद्दा नहीं उठाया गया है, तथापि, द्वेष और आदेश की प्रकृति दंडात्मक होने को स्थानांतरण के आक्षेपित आदेश पर हमला करने के लिए आधार के रूप में लिया गया है।

45. याचिकाकर्ता की ओर से लिखित कथन में उत्तरवादियों द्वारा लिए गए आधार का हवाला देते हुए तर्क दिया गया है, जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ यह आधार लिया गया है कि सरकारी/आधिकारिक कर्तव्य के निर्वहन में की गई अनियमितता के आधार पर इन्हें स्थानांतरित किया गया है ताकि निदेशक, सी.आई.पी., रांची के रूप में अपने कर्तव्य का निर्वहन करते समय याचिकाकर्ता के आचरण के संबंध में निष्पक्ष और उचित जांच हो सके।

46. यह आधार, इसलिए लिया गया है कि नियुक्ति प्राधिकारी द्वारा इसे एक प्रशासनिक अत्यावश्यकता के रूप में लिया जाए, जिसके कारण नियुक्ति प्राधिकारी ने रिट याचिकाकर्ता को सी.आई.पी., रांची से जी.एन.सी.टी., दिल्ली में दिनांक 28.11.2023 के आदेश के माध्यम से स्थानांतरित कर दिया।

47. 'प्रशासनिक अत्यावश्यकता' शब्द का व्यापक अर्थ है। स्थानांतरण आदेश में 'प्रशासनिक अत्यावश्यकता' शब्द का उल्लेख होते ही यह माना जायेगा कि प्राधिकारियों ने सेवा का बेहतर प्रशासन प्रदान करने के लिए एक या दूसरे लोक सेवक को स्थानांतरित करने के लिए अपने विशेषाधिकार का प्रयोग किया है।

48. वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए इस पर विचार किया जाना चाहिए, जहां से यह स्पष्ट है कि याचिकाकर्ता पर निदेशक, सी.आई.पी., रांची के रूप में कार्य करते समय सरकारी/आधिकारिक कर्तव्य के निर्वहन में अनियमितता का आरोप लगाया गया है।

49. इसलिए, यह आधार लिया गया है कि यदि रिट याचिकाकर्ता को उस स्थान पर रहने दिया जाए जहां निदेशक के रूप में कार्य करते समय उसके द्वारा अनियमितता

की गई है, तो ऐसी हालत में निष्पक्ष और यथोचित जांच नहीं हो सकती है, जैसा कि वर्तमान रिट याचिका में उत्तरवादियों द्वारा अपने लिखित कथन में आधार लिया गया है, जैसा कि प्रस्तुत रीत याचिका के पारा 5 से आगे संलग्न किया गया है।

50. इस न्यायालय का यह विचार है कि यदि नियुक्ति प्राधिकारी याचिकाकर्ता द्वारा की गई कथित अनियमितता के आधार पर निष्पक्ष जांच के लिए ऐसे निष्कर्ष पर पहुंचा है, तो इसे त्रुटिपूर्ण नहीं कहा जा सकता, बल्कि यह 'प्रशासनिक अत्यावश्यकता' की परिभाषा के तहत आएगा, ताकि जांच प्रभावित न हो और रिट याचिकाकर्ता के किसी व्यवधान और हस्तक्षेप के बिना जांच का संचालन हो सके।

51. याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने इस न्यायालय पर यह धारणा बनाने की कोशिश की है कि यदि वहां कथित अनियमितता का आरोप लगाया गया है, तो रिट याचिकाकर्ता को स्थानांतरित करने का अवसर कहां है।

52. यह प्रस्तुत किया गया है कि ऐसी परिस्थितियों में प्राधिकारी को रिट याचिकाकर्ता को निलंबित कर देना चाहिए था, ताकि कथित अनियमितता के संबंध में की जाने वाली जांच में रिट याचिकाकर्ता का कोई प्रभाव न हो।

53. हालांकि, यह न्यायालय इस तर्क से आश्चर्य चकित है, कारण यह कि याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता स्थानांतरण के बजाय निलंबन के लिए तैयार प्रतीत होते हैं, अर्थात, याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता भी इस तथ्य से सहमत हैं कि रिट याचिकाकर्ता का उपस्थित नहीं होना अपेक्षित है, ताकि कथित शुरू की जाने वाली जांच पर प्रतिकूल प्रभाव न पड़े। लेकिन याचिकाकर्ता के अनुसार उसे निलंबित करके भी ऐसा किया जा सकता है।

54. इस न्यायालय को यहां यह निर्दिष्ट करना अपेक्षित है कि निलंबन और स्थानांतरण एक या दूसरे लोक सेवक के सेवा पेशा (सर्विस कैरियर) के दो अलग-अलग पहलू हैं। निलंबन दो परिस्थितियों में आधारित हो सकता है; पहला विभागीय कार्यवाही पर विचार करने में और दूसरा दंड के रूप में, यदि सुसंगत आचरण नियम के तहत प्रावधान किया गया हो।

55. यह भी विवाद में नहीं है कि निलंबन, हालांकि, कोई कलंक वाला दण्ड नहीं है, लेकिन समान रूप, से इस बात से असहमत नहीं हुआ जा सकता कि निलंबन का, जहां तक समाज का सम्बंध है, प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

56. इसके अतिरिक्त, यदि किसी लोक सेवक को निलंबित कर दिया जाता है तो उसे आर्थिक हानि भी होगी, क्योंकि वेतन के स्थान पर उसे निर्वहन अनुदान/भत्ता दिया जाएगा।

57. यदि ऐसी परिस्थितियों में उत्तरवादीओं ने रिट याचिकाकर्ता को निलम्बित न करने का निर्णय लिया है, तो इसे उत्तरवादीओं का सद्भावपूर्ण दृष्टिकोण कहा जा सकता है, अन्यथा प्रतिवादियों के पास विभागीय कार्यवाही के मद्देनजर रिट याचिकाकर्ता को निलम्बित करने का विकल्प पहले से ही मौजूद था।

58. लेकिन निलम्बन आदेश का सहारा लेने के बजाय रिट याचिकाकर्ता को दिल्ली स्थानांतरित कर दिया गया है, ताकि उसकी अनुपस्थिति में निष्पक्ष जांच हो सके। उत्तरवादीओं के लिए ऐसी स्थिति इसलिए आवश्यक थी क्योंकि रिट याचिकाकर्ता, प्रासंगिक अवधि के दौरान, सी.आई.पी., रांची की स्थापना के निदेशक थे और यदि उनकी उपस्थिति में जांच की जाती तो याचिकाकर्ता के प्रतिकूल प्रभाव के कारण जांच में बाधा उत्पन्न होने की संभावना हो सकती थी।

59. प्रतिवादियों द्वारा रिट याचिकाकर्ता को स्थानांतरित करने में न्यायाधिकरण के समक्ष लिए गए आधार के अनुसार, निष्पक्ष और निर्बाध जांच के लिए उक्त तर्क प्रशासनिक अत्यावश्यकता के अंतर्गत आएगा।

60. विद्वान न्यायाधिकरण ने, उपरोक्त तथ्य पर विचार करने के पश्चात, हमारे सुविचारित मत के अनुसार, यह मान कर कोई गलती नहीं की है कि किसी संविधिक प्रावधान का उल्लंघन नहीं हुआ है या द्वेष का खोट नहीं है या आदेश सक्षम प्राधिकारी द्वारा जारी नहीं किया गया था।

61. इस न्यायालय द्वारा इस प्रकार सहमति व्यक्त करने का कारण यह है कि यदि रिट याचिकाकर्ता को निलम्बित किया गया होता, केवल तब यह कहा जा सकता था कि उत्तरवादीओं ने दुर्भावना से रिट याचिकाकर्ता को निलम्बित किया है, लेकिन यहां स्थिति ऐसी नहीं है, बल्कि उसे रांची से दिल्ली स्थानांतरित किया गया है और विधि का यह स्थापित नियम है कि स्थानांतरण सेवा का आपतन है और लोक सेवक को एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्थानांतरित करना नियुक्ति प्राधिकारी का विशेषाधिकार है।

62. इसके अलावा, जैसा कि सूचित किया गया है कि रिट याचिकाकर्ता ग्रुप-ए स्वास्थ्य सेवा से संबंधित है और इस प्रकार, वह जिस पद को धारण कर रहा है, वह पूरे देश में स्थानांतरण योग्य है और इस मामले के मद्देनजर, यदि उसे रांची से दिल्ली स्थानांतरित किया गया है, तो इसे दंडात्मक प्रकृति का नहीं कहा जा सकता है।

63. भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत प्रदत्त शक्ति का प्रयोग करने वाले न्यायालय को न्यायिक समीक्षा की शक्ति माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय के अनुसार बहुत कम है, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है।

64. चूंकि यह न्यायालय विद्वान न्यायाधिकरण द्वारा पारित आदेश पर विचार कर रहा है जिसमें न्यायिक समीक्षा की शक्ति का प्रयोग माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा **एल. चंद्रा कुमार बनाम भारत संघ और अन्य (1997) 3 एस.सी.सी. 261** में प्रकाशित, के मामले में दिए गए निर्णय के अनुसार किया जाना है, जिसके द्वारा और जिसके तहत न्यायिक समीक्षा की शक्ति को विचरित किया गया है, जिसका प्रयोग भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत प्रदत्त शक्ति के तहत उच्च न्यायालय द्वारा किया जाना है, तत्पर संदर्भ के लिए उपरोक्त निर्णय के प्रासंगिक पैराग्राफ का उद्धृण नीचे संदर्भित किया जा रहा है:-

> "99. हमारे द्वारा अपनाए गए तार्किकता के मद्देनजर, हम निर्धारित करते हैं कि अनुच्छेद 323-ए के खंड 2(डी) और अनुच्छेद 323-बी के खंड 3(डी), जिस सीमा तक वे संविधान के अनुच्छेद 226/227 और 32 के तहत उच्च न्यायालयों और सर्वोच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र को बाहर करते हैं, असंवैधानिक हैं। अधिनियम की धारा 28 और अनुच्छेद 323-ए और 323-बी के तत्वावधान में अधिनियमित अन्य सभी विधानों में "अधिकार क्षेत्र का अपवर्जन" खंड, उसी सीमा तक असंवैधानिक होंगे। संविधान के अनुच्छेद 226/227 के तहत उच्च न्यायालयों और अनुच्छेद 32 के तहत सर्वोच्च न्यायालय को प्रदान किया गया अधिकार क्षेत्र हमारे संविधान के अनतिक्रमणीय मूल ढांचे का एक हिस्सा है। जबकि इस अधिकार क्षेत्र को हटाया नहीं जा सकता है, अन्य न्यायालय और न्यायाधिकरण संविधान के अनुच्छेद 226/227 और 32 द्वारा प्रदत्त शक्तियों का निर्वहन करने में एक पूरक भूमिका निभा सकते हैं। संविधान के अनुच्छेद 323-ए और अनुच्छेद 323-बी के तहत बनाए गए न्यायाधिकरणों में संविधिक प्रावधानों और नियमों की संवैधानिक वैधता का परीक्षण करने की क्षमता रखते हैं। हालाँकि, इन न्यायाधिकरणों के सभी विनिश्चय उच्च न्यायालय की एक खंडपीठ के समक्ष जांच के अधीन होंगे, जिसके अधिकार क्षेत्र में संबंधित न्यायाधिकरण आता है। फिर भी, न्यायाधिकरण विधि के उन क्षेत्रों के संबंध में प्रथम दृष्टया न्यायालयों की तरह काम करना जारी रखेंगे जिनके लिए उनका गठन किया गया है। इसलिए, मुकदमेबाजों के लिए सीधे उच्च न्यायालयों का रुख करना खुला नहीं होगा, भले ही वे संबंधित न्यायाधिकरण के अधिकार क्षेत्र की अनदेखी करके संविधिक विधानों की वैधता पर सवाल उठाते हों (सिवाय इसके कि जहाँ विशिष्ट न्यायाधिकरण बनाने वाले विधान को

चुनौती दी गई हो)। अधिनियम की धारा 5(6) वैध और संवैधानिक है और इसकी व्याख्या इसी तरह की जानी चाहिए जैसा हमने संकेत दिया है।"

65. यह न्यायालय तथ्य और कानूनी स्थिति पर चर्चा करने के बाद अब भारतीय संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालय को दिए गए न्यायिक पुनर्विलोकन/समीक्षा के दायरे के बारे में चर्चा करने जा रहा है, जो कि न्यायनिर्णयनकर्ता द्वारा पारित पंचाट में हस्तक्षेप दर्शाता है, जैसा कि माननीय शीर्ष न्यायालय ने **सैयद याकूब बनाम राधाकृष्णन, ए.आई.आर. 1964 एस.सी. 477** में निर्धारित किया है। उक्त निर्णय का निम्मांकित पैराग्राफ 7 पुन: प्रस्तुत किया जा रहा है:-

"अनुच्छेद 226 के तहत उत्प्रेषण रिट जारी करने में उच्च न्यायालयों के अधिकार क्षेत्र की सीमाओं के बारे में प्रश्न पर इस न्यायालय द्वारा बार-बार विचार किया गया है और उस संबंध में वास्तविक विधिक स्थिति अब संदेह में नहीं है। उत्प्रेषण रिट निचली अदालतों या न्यायाधिकरणों द्वारा किए गए अधिकार क्षेत्र की त्रुटियों को सुधारने के लिए जारी की जा सकती है: ये ऐसे मामले हैं जहां निचली अदालतों या न्यायाधिकरणों द्वारा अधिकार क्षेत्र के बिना या उससे बाहर या अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने में विफलता के परिणामस्वरूप आदेश पारित किए जाते हैं। इसी प्रकार एक रिट तब भी जारी की जा सकती है जब उसे दिए गए अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए न्यायालय या न्यायाधिकरण अवैध या अनुचित तरीके से काम करता है, उदाहरण के लिए, वह आदेश से प्रभावित पक्ष को सुनवाई का अवसर दिए बिना किसी प्रश्न का निर्णय करता है, या जहां विवाद से निपटने में अपनाई गई प्रक्रिया प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के विपरीत है। हालांकि, इसमें कोई संदेह नहीं है कि उत्प्रेषण रिट जारी करने का अधिकार क्षेत्र एक पर्यवेक्षी अधिकार क्षेत्र है और इसका प्रयोग करने वाला न्यायालय अपीलीय न्यायालय की तरह कार्य करने का हकदार नहीं है। इस सीमा का अनिवार्यतः यह अर्थ है कि साक्ष्य की अभिमुल्यन के परिणामस्वरूप निचली अदालतों या न्यायाधिकरण द्वारा पहुंचे तथ्यों के निष्कर्षों को रिट कार्यवाही में फिर से नहीं खोला जा सकता है या उन पर सवाल नहीं उठाया जा सकता है। रिकॉर्ड पर स्पष्ट रूप से ज़ाहिर होने वाले विधि की त्रुटि को रिट द्वारा ठीक किया जा सकता है, लेकिन तथ्य की त्रुटि को नहीं, चाहे वह

कितनी भी गंभीर प्रतीत क्यों न हो। न्यायाधिकरण द्वारा दर्ज तथ्य के निष्कर्ष के संबंध में, यदि यह दर्शाया जाता है कि उक्त निष्कर्ष को दर्ज करते समय न्यायाधिकरण ने ग्राह्य और भौतिक साक्ष्य को ग्रहण करने से इनकार कर दिया था, या गलत तरीके से अग्रहणीय साक्ष्य को ग्रहण कर लिया था, जिसने आक्षेपित निष्कर्ष को प्रभावित किया है, तो उत्प्रेषण रिट जारी की जा सकती है। इसी प्रकार, यदि तथ्य का निष्कर्ष किसी साक्ष्य पर आधारित नहीं है, तो उसे विधि की त्रुटि माना जाएगा, जिसे उत्प्रेषण रिट द्वारा ठीक किया जा सकता है। हालाँकि, इस श्रेणी के मामलों से निपटने में, हमें हमेशा ध्यान में रखना चाहिए कि न्यायाधिकरण द्वारा दर्ज तथ्य के निष्कर्ष को उत्प्रेषण रिट के लिए कार्यवाही में इस आधार पर चुनौती नहीं दी जा सकती है कि न्यायाधिकरण के समक्ष प्रस्तुत प्रासंगिक और भौतिक साक्ष्य आक्षेपित निष्कर्ष को बनाए रखने के लिए अपर्याप्त या नामुनासिब थे। किसी बिंदु पर प्रस्तुत साक्ष्य की पर्याप्तता या यथायोग्यता और उक्त निष्कर्ष से निकाले जाने वाले तथ्य का अनुमान न्यायाधिकरण के अनन्य अधिकार क्षेत्र में है, और उक्त बिंदुओं को रिट न्यायालय के समक्ष प्रश्न नहीं उठाया जा सकता है। इन्हीं सीमाओं के भीतर उच्च न्यायालयों को अनुच्छेद 226 के तहत उत्प्रेषण रिट जारी करने के लिए प्रदत्त अधिकारिता का वैध रूप से प्रयोग किया जा सकता है।"

66. **हरि विष्णु कामथ बनाम अहमद इशाक एवं अन्य, ए.आई.आर. 1955 सुप्रीम कोर्ट 233** में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पैराग्राफ संख्या 21 में निम्नानुसार निर्धारित किया है:-

"उत्प्रेषण रिट के स्वरूप और क्षेत्र तथा जिन शर्तों के तहत इसे जारी किया जा सकता है, के संबंध में निम्नलिखित प्रतिपादनाएं स्थापित मानी जा सकती हैं: (1) उत्प्रेषण रिट अधिकार क्षेत्र की त्रुटियों को सुधारने के लिए जारी की जाएगी, जैसे कि जब कोई निचली अदालत या न्यायाधिकरण अधिकार क्षेत्र के बिना या उससे बाहर कार्य करता है, या इसका प्रयोग करने में विफल रहता है। (2) उत्प्रेषण रिट तब भी जारी की जाएगी जब न्यायालय या न्यायाधिकरण अपने निस्संदेह अधिकार क्षेत्र के प्रयोग में अवैध रूप से कार्य करता है, जैसे कि जब वह पक्षों को सुनवाई का अवसर दिए बिना निर्णय देता है, या प्राकृतिक

न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन करता है। (3) उत्प्रेषण रिट जारी करने वाला न्यायालय पर्यवेक्षी अधिकार क्षेत्र के प्रयोग में कार्य करता है, न कि अपीलीय अधिकार क्षेत्र के। इसका एक परिणाम यह है कि न्यायालय निचली अदालत या न्यायाधिकरण द्वारा प्राप्त तथ्यों की समीक्षा नहीं करेगा, भले ही वे गलत हों। यह इस सिद्धांत पर आधारित है कि जिस न्यायालय के पास किसी विषय-वस्तु पर अधिकार है, उसके पास गलत और सही दोनों तरह के निर्णय लेने का अधिकार है, और जब विधानमंडल उस निर्णय के विरुद्ध अपील का अधिकार प्रदान नहीं करना चाहता है, तो यह उसके उद्देश्य और नीति को विफल कर देगा, यदि कोई उच्च न्यायालय साक्ष्य के आधार पर मामले की फिर से सुनवाई करता है और अपने स्वंय के निष्कर्षों को प्रतिस्थापित करता है।"

67. **सावर्ण सिंह एवं अन्य बनाम पंजाब राज्य एवं अन्य, (1976) 2 एस.सी.सी. 868** में माननीय न्यायाधीशों ने भारतीय संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत उत्प्रेषण रिट जारी करने की शक्ति पर चर्चा करते हुए पैराग्राफ 12 और 13 में निम्नलिखित रूप में यह निर्धारण किया है:-

"12. संयाचित प्रतिविरोध पर विचार करने से पहले, उत्प्रेषण रिट के अधिकार क्षेत्र की सीमाओं को इंगित करने वाले सामान्य सिद्धांतों पर ध्यान देना उपयोगी होगा, जिसका प्रयोग केवल निचली अदालतों या न्यायाधिकरणों द्वारा किए गए अधिकार क्षेत्र की त्रुटियों को सुधारने के लिए किया जा सकता है। उत्प्रेषण रिट केवल पर्यवेक्षी अधिकार क्षेत्र के प्रयोग में जारी की जा सकती है जो अपीलीय अधिकार क्षेत्र से भिन्न है। अनुच्छेद 226 के तहत विशेष अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने वाला न्यायालय अपीलीय न्यायालय के रूप में कार्य करने का हकदार नहीं है। जैसा कि इस न्यायालय ने सैयद याकूब के मामले (सुप्रा) में बताया था।

13. किसी निचले न्यायाधिकरण द्वारा दर्ज तथ्य के निष्कर्ष के संबंध में, उत्प्रेषण रिट केवल तभी जारी की जा सकती है जब ऐसे निष्कर्ष को दर्ज करते समय न्यायाधिकरण ने ऐसे साक्ष्य पर कार्य किया हो जो कानूनी रूप से अग्राह्य हो, या उसने ग्राह्य साक्ष्य को स्वीकार करने से इन्कार कर दिया हो, या यदि निष्कर्ष किसी भी साक्ष्य द्वारा समर्थित न हो, क्योंकि ऐसे मामलों में त्रुटि विधि की त्रुटि के बराबर होती है। रिट क्षेत्राधिकार केवल उन मामलों तक ही विस्तारित होता है जहां

निचली अदालतों या न्यायाधिकरणों द्वारा उनके क्षेत्राधिकार से परे या उनमें निहित क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने से इन्कार करने के फलस्वरूप आदेश पारित किए गए हैं या वे अपने क्षेत्राधिकार के प्रयोग में अवैध रूप से या अनुचित तरीके से कार्य करते हैं जिससे न्याय की गंभीर विफलता होती है।"

68. **हेंज इंडिया (पी) लिमिटेड और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, (2012) 5 एस.सी.सी. 443** में, माननीय न्यायाधीशों ने पैराग्राफ 66 और 67 में निम्नानुसार निर्धारित किया है:-.....

"66. न्यायिक समीक्षा की शक्ति के प्रयोग से निपटने वाला न्यायालय विधानमंडल या कार्यपालिका या उनके प्रतिनिधियों के निर्णय के स्थान पर अपने निर्णय को प्रतिस्थापित नहीं करता है, तथा न्यायालय अपने स्वयं के समीक्षा द्वारा "विशेषज्ञ की भावना" को प्रतिस्थापित नहीं करता है, यह भी इस न्यायालय के विनिश्चयों द्वारा सुस्थापित है। ऐसे सभी मामलों में न्यायिक जांच केवल यह पता लगाने तक सीमित है कि तथ्यों का निष्कर्ष साक्ष्य पर तर्कसंगत आधारित है या नहीं और, क्या ऐसे निष्कर्ष देश की विधि के अनुरूप हैं।

67.धरंगधर केमिकल वर्क्स लिमिटेड बनाम सौराष्ट्र राज्य में इस न्यायालय ने निर्धारित किया है कि तथ्य के किसी प्रश्न पर न्यायाधिकरण का विनिश्चय, जिसे अवधारित करने का अधिकार उसके पास है, संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत कार्यवाही में प्रश्नगत नहीं किया जा सकता है, जब तक कि यह दर्शाया न जाए कि यह किसी साक्ष्य द्वारा पूरी तरह से असमर्थित है। इसी प्रभाव का इस न्यायालय द्वारा थानसिंह नाथमल मामले में इसी प्रकार का दृष्टिकोण अपनाया गया है, जहां इस न्यायालय ने निर्धारित किया कि उच्च न्यायालय आम तौर पर ऐसे प्रश्नों का अवधारण नहीं करता जिनके लिए रिट का दावा किए जाने का अधिकार स्थापित करने के लिए साक्ष्य के विस्तृत जांच की अपेक्षा होती है।"

69. **पश्चिम बंगाल केंद्रीय विद्यालय सेवा आयोग एवं अन्य बनाम अब्दुल हलीम एवं अन्य (2019) 18 एस.सी.सी. 39** में रिपोर्ट किए गए मामले में, माननीय न्यायाधीशों ने पैराग्राफ 30 में यह निर्धारित किया

है कि न्यायालय द्वारा न्यायिक समीक्षा की शक्ति का प्रयोग यह अवधारित करने के बाद किया जाना चाहिए कि आक्षेपित आदेश रिकॉर्ड पर स्पष्टतः दृश्यमान त्रुटि के कारण दूषित है न कि तर्क की प्रक्रिया से इसे स्थापित किया गया है, उपरोक्त निर्णय का पारा 30 इस प्रकार है:-

"30. न्यायिक समीक्षा की अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए, न्यायालय को यह देखना है कि आक्षेपित विनिश्चय विधि की स्पष्ट त्रुटि के कारण दूषित है या नहीं। यह अवधारित करने का परीक्षण कि क्या कोई विनिश्चय रिकॉर्ड पर स्पष्ट त्रुटि के कारण दूषित है या नहीं, यह है कि क्या त्रुटि रिकॉर्ड के तथ्य से स्वयं सुव्यक्त है या क्या त्रुटि को स्थापित करने के लिए जांच या तर्क की अपेक्षा है। यदि किसी त्रुटि को तर्क की प्रक्रिया द्वारा स्थापित किया जाना है, तो उन बिंदुओं पर जहां तार्किक रूप से दो राय हो सकते हैं, इसे रिकॉर्ड के तथ्य पर त्रुटि नहीं कही जा सकती है, जैसा कि इस न्यायालय ने सत्यनारायण बनाम मल्लिकार्जुन, ए.आई.आर. 1960 एस.सी. 137 में रिपोर्टेड, में निर्धारित किया है। यदि किसी संविधिक नियम का प्रावधान तार्किक रूप से दो या अधिक अर्थयान्वयन के लिए समर्थ हैं और एक अर्थयान्वयन को अपनाया गया है, तो रिट कोर्ट के लिए विनिश्चय हस्तक्षेप के लिए खुला नहीं होगा। यह केवल एक प्रासंगिक संविधिक प्रावधान की स्पष्ट गलत व्याख्या, या उसकी अज्ञानता या अवहेलना, या ऐसे कारणों पर आधारित विनिश्चय है जो विधि में स्पष्ट रूप से गलत हैं, जिसे रिट कोर्ट द्वारा उत्प्रेषण रिट जारी करके ठीक किया जा सकता है।"

70. **टी.सी. बसप्पा बनाम टी. नागप्पा** के मामले में, **(1955) 1 एस.सी.आर. 250** में रिपोर्टेड, माननीय न्यायधीशों ने निर्धारित किया है कि विनिश्चय में स्पष्ट दिखने वाली त्रुटि को उत्प्रेषण रिट द्वारा ठीक किया जा सकता है, जब यह कार्यवाही में बिल्कुल स्पष्ट प्रकट होता दिखे। उपर्युक्त निर्णय का प्रासंगिक भाग यहां उद्धृत किया जाता है: -

"10. ... ... विनिश्चय या अवधारण में कोई त्रुटि भी उत्प्रेषण रिट के लिए अध्यधीन हो सकती है, लेकिन यह कार्यवाही के तथ्य से स्पष्ट दृश्यमान होनी चाहिए, उदाहरण के लिए जब यह विधि के प्रवधानों की स्पष्ट अज्ञानता या उपेक्षा पर आधारित हो। दूसरे शब्दों में, यह एक दृश्यमान

त्रुटि है जिसे उत्प्रेषण द्वारा ठीक किया जा सकता है, लेकिन केवल गलत विनिश्चय नहीं। ..."

71. माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा उपर्युक्त निर्णयों में न्यायिक समीक्षा की शक्ति पर विचार किया गया है, जिसमें ऐसी शक्ति का प्रयोग किया जा सकता है, यदि संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत दी गई चुनौती में, आक्षेपित आदेश में दृश्यमान त्रुटि प्रतीत होती है।

72. उपर्युक्त चर्चा के अनुसार, इस न्यायालय का विचार है कि यह ऐसा मामला नहीं है जहां न्यायिक समीक्षा की शक्ति का प्रयोग किया जाए।

73. तदनुसार, इस न्यायालय का विचार है कि आक्षेपित आदेश में हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है, इसलिए, यह याचिका विफल होती है और खारिज की जाती है।

(सुजीत नारायण प्रसाद, न्या.)

(अरुण कुमार रॉय, न्या.)

बीरेंद्र/**ए.एफ.आर.**

यह अनुवाद शबनम (पैनल अनुवादक) द्वारा किया गया।